अङ्क-२४
जुलाई-दिसम्बर २०१४

वेदविद्या
ISSN-2230-8962

वेदों में जलप्रबन्धन

डॉ. कृपाशङ्कर शर्मा

वेद हमारी सभ्यता, संस्कृति, धर्म, दर्शन, कला आदि से सम्बद्ध विचारों को मन्त्रों, स्तुतियों के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। ये हमारी आध्यात्मिक, धार्मिक, सांस्कृतिक सत्ता के प्राणस्वरूप हैं; वेद की ऋचाएँ समाज को नूतनाभिनूतन दिशाएँ प्रदान करती हैं। इसीलिए ऋषियों ने स्वमेधा से उनका साक्षात्कार किया है।

ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः

वैदिकमन्त्रों में जीवन-प्रबन्धन, युद्धप्रबन्धन, राज्यप्रबन्धन, पर्यावरणप्रबन्धन आदि गवेष्य विचारों का साक्षात्कार होता है। वर्तमान में जल की अपव्ययता के कारण तथा प्राकृतिकप्रकोपवशात् देवराज इन्द्र की कृपादृष्टि का भूमण्डल पर अभाव परिलक्षित होता है। फलस्वरूप अनावृष्टि, अतिवृष्टि जैसी प्राकृतिक समस्याएँ जीवमात्र के लिए हानिप्रद होती जा रही हैं । जीवमात्र की आवश्यकता को लक्ष्य करके प्रस्तुत विचार में जलप्रबन्धन के मन्त्रों का आश्रय लेकर गवेष्यदृष्टि को प्रकाशित किया जाना अभीष्ट है । प्रायः वैदिकवाङ्मय में नदियों के स्वरूप तथा तत् सम्बद्ध संवादों का वर्णन प्राप्त है । नदियाँ चराचर जगत् की प्राणशक्ति तथा वाणी को प्रदान करने वाली मान्य की गई हैं । ये भौतिकतत्त्वों का एक प्रवाहमात्र ही नहीं हैं अपितु प्राणिमात्र के लिए अथ से लेकर इति पर्यन्त की जीवनयात्रा का शाश्वत तत्त्व हैं । आख्यानों में वर्णन है कि नदियाँ पर्वतों को विदीर्ण कर लास्यपूर्वक प्रवाहित होते हुए जीवमात्र को शक्ति प्रदान करती हैं । वर्तमान में नदियों के वास्तविक स्वरूपों में परिवर्तन दिखलायी देता है। इसके अनेक कारण हैं ।

१. नदियों के तीरों पर रासायनिक एवम् अन्य कारखानों का निर्माण कर उनके प्राकृतिक जल को दूषित करना।

२. नदियों के प्रवहमान क्षेत्रों पर अनुपयोगी बाँधों का निर्माण कर जलप्रवाह को बाधित करना।

ऋग्वेद में जलप्रबन्धन का उल्लेख है ;-

परावतं नासत्यानुदेथामुचाबुध्नं चक्रथुर्जह्नबारम्।
क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य॥[१]

[१] ऋग्वेद १.११६.९

इस मन्त्र में कहा गया है कि सत्यपालन करने वाले अश्विदेव एक स्थल से कूप का जल बहुत दूर तक नहर-योजना के माध्यम से ले गये। उन्होंने कूप के जलस्तर में वृद्धि कर वक्रीमार्ग से जल प्रवाहित कर उस जल को गोतम ऋषि के आश्रम में पहुँचाया। जिसके फलस्वरूप आश्रमस्थ जनों की पानी के अभाव की विकट समस्या का समाधान हुआ।

ऋग्वेद के चतुर्थमण्डल में उल्लेख है कि इन्द्र और वायु तुम दोनों सोमरसों को पान कर सकते हो, जिस प्रकार जल सङ्ग्रहीत होकर नीचे स्थल की ओर प्रवाहित होने लगता है, ठीक उसी प्रकार ये सोमरस तुम दोनों की ओर दौड़ता है ;-

इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः।
युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक्॥[१]

इस मन्त्र में कहा गया है कि जल सङ्ग्रहीत होकर प्रवाहित होने लगता है। यह मन्त्र हमें जलसङ्ग्रहण तथा आवश्यकतानुसार प्रवाहित करने का सङ्केत प्रदान करता है।एक स्थान पर उल्लेख है कि-

यं सीमनु प्रवतेव द्रवन्तं विश्वः पुरुमंदति हर्षमाणः।
पद्भिर्गृभ्यन्तं मेधयुं न शूरं रथतुरं वातमिव ध्रजन्तम्॥[२]

यहाँ उल्लेख है कि **"यं सीमनु प्रवतेव द्रवन्तं"** अर्थात् निम्नस्थान पर चारों ओर से जल एकत्रित होता है। यह सन्दर्भ जल-सङ्ग्रहण गहराईयुक्त स्थल पर हो या स्थल गहरा किया जाए। चतुर्थमण्डल के ३० वें सूक्त में इन्द्र का संस्तवन है, जहाँ उल्लेख है कि सिन्धु नदी वा अन्य कोई एक नदी जो जलाप्लावित कारण से वेगपूर्वक प्रवहमान है उसे इन्द्र द्वारा योजनापूर्वक स्थिर किया गया, जिससे बाढ़ का खतरा दूर हुआ। यह सङ्केत वर्षा ऋतु में नदियों के जलप्रवाह तथा ग्राम्य, नगर-सुरक्षा की दृष्टि को रेखाङ्कित करता है। यह प्रबन्धन-व्यवस्था का महनीय अङ्ग है ;-

उत सिन्धुं विबाल्यं वितस्थानामधि क्षमि।
परिष्ठा इन्द्र मायया॥[३]

प्रायः अनेक नदियों की स्थिति सदा प्रवाहिता नहीं है । वर्षाकाल में ही उनका साक्षात्कार होता है। पुण्यसरिताओं के प्रवाह को बाधित करने का क्रम पूर्वकाल में भी विद्यमान था। ऋग्वेद के ही चतुर्थमण्डल के अट्ठावीसवें सूक्त की ऋचा इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करती है; वहाँ मन्त्र का भावार्थ इस प्रकार है- सोम से मित्रता करके और उसकी सहायता द्वारा इन्द्र ने मनु के निमित्त प्रवाहयुक्त जलों

[१] ऋग्वेद ४.४७.२
[२] ऋग्वेद ४.३८.३
[३] ऋग्वेद ४.३०.१२

को उत्पन्न किया। अहि नामक दैत्य का दमन कर सप्तनदियों को प्रवाहित कर अवरुद्ध मार्गों का उद्घाटन किया। फलस्वरूप सरिताएँ प्रवाहिता बनीं।

त्वा युजा तव तत् सोम सख्य इन्द्रो अपो मनवे सस्रुतस्कः।
अहन्नहिमरिणात् सप्त सिन्धूनपावृणोदपिहितेव खानि ॥[१]

इन्द्र ने पर्वतों को विदीर्ण कर जलप्रवाह को पूर्णवेग से प्रवाहित किया जिसके फलस्वरूप सर्वत्र धान्योत्पत्ति अधिक मात्रा में हुई जिससे समस्त जीवमात्र का जीवन सुखमय व समृद्ध हुआ।

वि यद् वरांसि पर्वतस्य वृण्वे पयोभिर्जिन्वे अपां जवांसि।
विदद् गौरस्य गवयस्य गोहे यदी वाजाय सुध्यो वहन्ति॥[२]

एक स्थान पर इन्द्र ने नदियों को जल से परिपूर्ण कर प्राणिमात्र के लिये सरलतापूर्वक पार करने योग्य बनाया।

त्वं महीमवनिं विश्वधेनां तुर्वीतये वय्याय क्षरन्तीम्।
अरमयो नमसैजदर्णः सुतरणां अकृणोरिन्द्र सिन्धून्॥[३]

ऋग्वेद के ही चतुर्थमण्डल के १७ वें सूक्त के मन्त्र में **'अवते न कोशम्'**[४] यह वाक्य जलकोश का प्रमाण प्रस्तुत करता है । इसका भावार्थ है कि कुएँ से जल पात्र द्वारा निकालना चाहिए। इसका तात्पर्य है कि आवश्यकतानुसार जल पात्र द्वारा निकालने से अपव्यय नहीं होगा।

इन्द्र ने विद्युत् द्वारा मेघ को तोड़कर धरा पर जलवृष्टि की और समुद्र में प्रवाहित कर वाष्पीकरण-क्रिया के द्वारा अन्तरिक्ष में मेघरूप में भ्रमणशील हुआ। यह सन्दर्भ जलप्रबन्धन को ही द्योतित करता है।

एक स्थान पर नाविक मल्लाह होने का सन्दर्भ है-**'नाव यान्तं इव उभये हवन्ते'** । ऋग्वेद में नदियों के संवादात्मक-स्वरूप की चर्चा प्राप्त है; जहाँ स्तुतिकर्ता नदियों से पुण्यत्व, उपादेयत्व तथा उनके प्रयोग व संरक्षण की ओर सङ्केत करता हुआ नदियों का संस्तवन करता है। विश्वामित्र विपाट् और शुतुद्री नदियों के किनारे पहुँचते हैं जहाँ उन्हें नदियों में अगाध जलराशि का दर्शन होता है। नदी पार करने की चेष्टा से विश्वामित्र उनकी स्तुति करते हैं ;-

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वे इव विषिते हासमाने।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाडुतुद्री पयसा जवेते॥[१]

---

[१] ऋग्वेद ४.२८.१
[२] ऋग्वेद ४.२१.८
[३] ऋग्वेद ४.१९.६
[४] ऋग्वेद ४.१७.१६

अर्थात् पर्वतों को विदीर्ण कर स्वच्छ निर्मल जल से परिपूर्ण वेगयुक्त समुद्र की ओर दौड़ी जा रही हैं। जिस प्रकार दो घोड़ियाँ बन्धनमुक्त होकर प्रसन्नता से हिनहिनाती हुई इधर-उधर भागती हैं। नदियों के पारस्परिक मिलन की भी चर्चा वेद में मिलती है। ये परस्पर मिलकर बहती हैं और अपने स्वादिष्ट जल से वसुन्धरा को उर्वरा बनाती हैं ;-

अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं विपाशमुर्वीं सुभगामगन्म।
वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु संचरन्ती॥[२]

नदियाँ कभी विश्राम नहीं लेतीं, सर्वदा प्रवाहिता रहती हैं । इसका प्रमाण वेद में मिलता है ;-

एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः।
न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति॥[३]

विश्वामित्र की प्रार्थना सुनकर नदियाँ कहती हैं- इन्द्र ने खनन करके हमें बहाया है, हमारे मार्ग को निश्चित किया, 'वृत्र' नामक असुर ने बाधित करने का प्रयास किया, परन्तु इन्द्र ने उसका वध कर हमें प्रवहमान बनाया।

नदी और विश्वामित्र-सवांदसूक्त में नदियाँ स्वयं कहती हैं कि हमारा कभी भी किसी प्रकार से अनादर नहीं होना चाहिए ;-

एतद् वचो जरितर्मापि मृष्ठा आ यत् ते घोषानुत्तरा युगानि।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते॥[४]

नदियाँ कहती हैं-हे ऋषि ! हमारे संवाद को विस्मृत मत करना क्योंकि यह संवाद लोक में प्रसिद्ध होगा। यज्ञ में सदैव स्तुति करना, कदापि अनादर मत करना। नदियों का अनादर नहीं करना चाहिए। यहाँ अनादर से तात्पर्य नदियों को प्रदूषणयुक्त न किया जाय से है। ये सर्वदा स्वच्छ, निर्मल जल से परिपूर्ण रहते हुए प्रवहमान रहें अर्थात् नदियों की स्वच्छता का विशेष ध्यान दिया जाये। विश्वामित्र ने भी उनके वचनों को सुनकर कहा- मैं बहुत दूर स्थान से गाड़ी और रथ पर बैठकर आया हूँ । हे देवियो ! तुम अपने प्रवाह को थोड़ा कम करके मेरे पार करने योग्य सुगमता प्रदान करो ;-

ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत यथौ वो दूरादनसा रथेन।
नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधोअक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः॥[५]

इसी सूक्त में नहरों को जल से परिपूर्ण करने की चर्चा है;-

---

[५] ऋग्वेद ३.३३.१
[१] ऋग्वेद ३.३३.३
[२] ऋग्वेद ३.३३.४
[३] ऋग्वेद ३.३३.८
[४] ऋग्वेद ३.३३.९

अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम्।
प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम्॥[१]

विश्वामित्र नदियों से कहते हैं कि पार जाने की कामना करने वाले मनुष्य तुम्हारे तट पार कर गये हैं और मैं भी तुम्हारी पावनत्व-बुद्धि को प्राप्त कर गया हूँ। हे सरिताओ ! अब तुम श्रेष्ठ अन्न उत्पन्न कर ऐश्वर्य की वृद्धिकारक होकर नहरों को अपने स्वादिष्ट जल से परिपूर्ण कर दो और वेगपूर्वक प्रवहमान हो जाओ ।

जल का अपव्यय न करने के लिये भी सन्दर्भ मिलता है ;-

उद् व ऊर्मिःशम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।
मादुष्कृतौ व्येनसा ऽघ्न्यौ शूनमारताम्॥[२]

नदियों के पावन तट पर सदा यज्ञादि, अनुष्ठानादि सम्पादित होते हैं। यज्ञशालाओं के स्तम्भों से तुम्हारी उर्मियाँ टकराती हैं। तुम्हारा जल बैल के जुओं को मुक्त करता रहे अर्थात् नदियों के तटों पर कृषक सदा कृषि करता रहे । तुम निष्पाप होकर सदैव समृद्धि को प्राप्त करो। नदियों की हिंसा नहीं होनी चाहिए । उनके जल का सदैव सदुपयोग हो, कदापि दुरुपयोग न हो । इनके जल का दुरुपयोग ही हिंसा मानी जाती है।

पर्जन्यसूक्त में संस्तवन के माध्यम से नदियों के पूर्व-दिशा की ओर प्रवाहित होने की बात भी मिलती है ;-

अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परि दीया रथेन।
दृतिं सु कर्ष विषितं न्यञ्चं समा भवन्तूद्वतो निपादाः॥[३]

अर्थात् हे मेघ ! खूब जलवृष्टि कर सर्वत्र जल की परिपूर्णता करो। गहरे और उन्नत स्थान का ज्ञान न हो सके, इस प्रकार जलपूर्ण वसुन्धरा को कीजिए। तू अपने जलरूपी महान् खजाने को उद्घाटित कर उसे नीचे की ओर प्रवाहित कर। जल से भरी नदियाँ पूर्वदिशा की ओर बहें। जल से सभी स्थलों को परिपूर्ण कर दें जिससे कि समस्त प्राणिमात्र को पर्याप्त जलराशि प्राप्त हो सके। जलाप्लावित नदियों का जल सीधे समुद्र में जावे, इधर-उधर न जावे । इस हेतु वरुणदेव की उपासना करे । वरुणदेव जल के अधिपति हैं ; उनके संस्तवन करने से वे प्रसन्न होकर जलाप्लावित स्थिति पर नियन्त्रण करेंगे।

इमामू नु कवितमस्य मायां महीं देवस्य नकिरा दधर्ष।

---

[१] ऋग्वेद ३.३३.१२
[२] ऋग्वेद ३.३३.१३
[३] ऋग्वेद ५.८३.७

एकं यदुद्रा न पृणन्त्येनीरासिञ्चन्तीरवनयः समुद्रम्॥[१]

यह वरुणदेव की माया है कि समस्त नदियाँ सदा प्रवहमान रहती हैं और अपरिमित जल समुद्र में निक्षेप करती हैं; परन्तु सभी नदियाँ समुद्र को परिपूर्ण नहीं कर पाती हैं। यह वरुण का अद्भुत प्रभाव है। वरुणदेव सज्जन पुरुष, मित्र, भाई, सहायक आदि समस्त लोगों को निष्पाप कर अपराधमुक्त कर देता है;-

अर्यम्यं वरुण मित्र्यं वा सखायं वा सदमिद् भ्रातरं वा।
वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा यत् सीमागश्चकृमा शिश्रथस्तत्॥[२]

यजुर्वेद के अष्टमाध्याय में सोमसम्बद्ध आख्यान में उल्लेख है कि - मेघों के अन्दर प्रतिष्ठित रहने वाले जलवर्षण के लिए तुम्हें कम्पित करता हूँ। शब्द करते हुए मेघोदर में निहित जलवृष्टि के लिए तुम्हारा अर्चन करता हूँ। मधुमन्तस्वरूप को पृथिवी पर वर्षण के निमित्त कम्पित करता हूँ।वरुण का हृदय जलाशय के अभ्यन्तर प्रतिष्ठित है अर्थात् समुद्र में कार्यरूपी महासागर में प्रविष्टि हो ;-

ते हृदय अप्सु अन्तः समुद्रे[३]

अथ च - **त्वां ओषधीः उत् आपःआविशन्तु,**[४]

तुम्हारे प्रति औषधियाँ और जलप्रवाह चलते रहे हैं। एक स्थल पर जल और ओषधियों को नष्ट नहीं करने की बात कही गई है;-

माऽपो मौषधीर्हिंसीर्धाम्नो राजस्ततो वरुण नो मुच्यते।

अर्थात् **'आपः औषधी मा हिंसीः'**, जल और औषधी को नष्ट न किया जाय। यह सन्दर्भ जलसंरक्षण तथा प्रकृति-संरक्षण के प्रति सन्देश है । वहीं आगे चलकर जलप्रवाह सर्वदा उत्तम हवन के योग्य रस और अन्न से युक्त हो, उनको हवि के रूप में ज्ञानीजन प्रयोग में लाएँ ।

हविष्मतीरिमा आपो हविष्माँ२ आ विवासति।[५]

एक स्थान पर सवितृ को जल का रक्षक घोषित किया गया है;-

देवी आपः चित्स्वयायत्तम्[६]

जल एक प्रकार से चिकित्सक भी है , यजुर्वेद में इसका सन्दर्भ है ;-

श्वात्राः पीता भवत यूयमापो अस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः।

---

[१] ऋग्वेद ५.८५.६
[२] ऋग्वेद ५.८५.७
[३] ऋग्वेद
[४] ऋग्वेद
[५] यजुर्वेद ६.२३
[६] ऋग्वेद ६.१०

ता अ॒स्मभ्य॑मय॒क्ष्मा अ॑नमी॒वा अना॑गस॒: स्वद॑न्तु दे॒वीर॒मृता॑ ऋता॒वृध॑:॥ [1]

इस मन्त्र में जल को रोगनिवारक, क्षयादि रोगोपशामक तथा अपच इत्यादि दोषों को दूर करने वाला बतलाया है। दिव्य उदक हमारे अभीष्ट की सिद्धि का कारक है, तृषा-शान्ति का मूल तत्त्व है; वह कल्याणप्रद होवे, सदैव प्रवहमान हो;-

शं नो॑ दे॒वीर॒भिष्ट॑य॒ आपो॑ भवन्तु पी॒तये।
शं योर॒भि स्र॑वन्तु नः॥ [2]

यहाँ जल के निर्मलीकरण की ओर सङ्केत प्रतीत होता है।

प्रस्तुत आलेख में जलप्रबन्धन के आवश्यक तथा उपादेय तत्त्वों को उपस्थापित करने का प्रयास किया है। अस्तु ! इससे यही तात्पर्य निकलता है कि जलप्रबन्धन कर प्राणिमात्र का जीवन तथा प्राकृतिक-सम्पदाओं का संरक्षण कर जल ही जीवन है; इस मन्त्र की सार्थकता सिद्ध करें।

डॉ. कृपाशङ्कर शर्मा
असि. प्रोफेसर, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
(मानित विश्वविद्यालय)
श्री सदाशिव परिसर, पुरी (उड़ीसा)

[1] यजुर्वेद ४.१२
[2] ऋग्वेद १०.९.४